

आलेख

संत रैदास के काव्य में मूल्य-शिक्षा

आनन्दप्रकाश त्रिपाठी

विभागाध्यक्ष, डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)

संत कवि रैदास/ रविदास भारतीय संतकवि- परंपरा के उज्ज्वल नक्षत्र हैं। वे हिंदी भक्तिकाव्य की ज्ञानाश्रयी शाखा के अन्यतम कवि और आध्यात्मिक पुरुष हैं। उन्हें कबीर -परंपरा का संत कहा गया है। उन्हें श्रमण संस्कृति का ध्वजवाहक भी कहा गया है। संत सिपाही रैदास कहकर भी उनके प्रति श्रद्धा व्यक्त की गई है।

रैदास का सहज -सरल और ज्ञानमय व्यक्तित्व तथा उनकी अमर वाणी सदियों से भारतीय जनमानस के लिए प्रेरणा का अजस्र स्रोत बनी हुई है। रैदास के जन्म और मृत्यु की तिथि के विषय में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। फिर भी, माना जा सकता है कि रैदास माघ सुदी 15 पूर्णिमा, 1377ई. को इस धराधाम में अवतरित हुए और बैसाख चतुर्थी, संवत् 1528 ई. को ब्रह्मलीन हो गए। रैदास का जन्म काशी नगरी के मांडुर गांव (मंडुवाडीह) में हुआ था। उनके पिता संतोखदास /रघू और माता घुरबिनिया/ कर्मदेवी थीं। पिता चर्मकार थे। रैदास की पत्नी का नाम लोना देवी था। उनके परिवार में धार्मिक वातावरण था। रैदास और लोना के प्रारंभिक जीवनकाल में धर्म और ईश्वर भक्ति के प्रति आस्था जागृत हो चुकी थी। रैदास शिक्षा - दीक्षा से वंचित रहे। उस काल में वेद शास्त्र आदि पढ़ना उनकी जाति के लिए सर्वथा वर्जित था। सत्संग के माध्यम से ही उन्होंने ज्ञानार्जन किया। बौद्धधर्म का प्रभाव रैदास के जीवन और चिंतन पर स्वाभाविक रूप से पड़ा है। रैदास की प्रतिभा और व्यक्तित्व से कबीरदास बहुत प्रभावित हुए थे। कबीर और रैदास आचार्य रामानंद के प्रिय शिष्य थे। रैदास के स्वभाव के बारे में ' हिंदी साहित्य का बृहद इतिहास , चतुर्थ भाग, भक्तिकाल (निर्गुण साहित्य) में लिखा गया है - " रैदास या रविदास एक अत्यंत विनम्र स्वभाव वाले, खंडन - मंडन की प्रवृत्ति से रहित बड़े उच्च कोटि के संत प्रसिद्ध हैं।" (पृष्ठ 143)

लोक प्रसिद्धि है कि चित्तौड़गढ़ के झाला वंश की रानी झाली रैदास के विचारों और व्यक्तित्व से बेहद प्रभावित हुईं और उनकी शिष्या बन गईं।

रैदास एक चर्मकार परिवार में जन्मे थे। अपने अनेक पदों में उन्होंने अकुंठ भाव से अपने चर्मकार होने को स्वीकार किया है।

कह रैदास खलास चमारा, जो उस सहर सो मीत हमारा। (पद 5), राजाराम की सेव न कीन्हीं, कहि रविदास चमारा। (पद 87), नागरजनां मेरी जाति बिखिआत चमारं। (पद 60), नीचे से प्रभु ऊंच कवियों है कि रविदास चमारा। (पद 69) हम शरणागति राम रानीको, कह रैदास चमारा। (पद 80) यह आत्मस्वीकृति उनकी निर्भयता और आत्मविश्वास की परिचायक है।

रैदास सत्संगी पुरुष थे। सत्संग करने में उनका गहरा विश्वास था। वैसे भी संतों का जीवन एक स्थान से नहीं बंधा रहता था। कहा गया है कि 'बहता पानी रमता जोगी।' बहते हुए पानी की तरह साधु भी एक जगह पर थिर नहीं रहता है। 'सत्संग के लिए भटकना जरूरी होता है ; क्योंकि संतों के लिए सत्संग का मूल उद्देश्य जन कल्याण से जुड़ा है। संतों का जनता के बीच जाना और उनके कष्टों, समस्याओं और विषम परिस्थितियों पर विचार- विमर्श करना प्रमुख मकसद रहा है। सांसारिक जीवन के कष्टों का हरण अध्यात्मिक होने से संभव है। वास्तव में सत्संग की प्रथा श्रमण संस्कृति की विशेषता रही है। रैदास ने सत्संग के लिए भ्रमण वृत्ति को अपनाया था। वैसे तो मध्यकालीन भारत के लगभग सभी संतों ने सामाजिक और आध्यात्मिक जागरण के उद्देश्य से देश और दुनिया के अनेक देशों, विशेषकर मुस्लिम देशों की यात्राएं कीं और विश्व को मानवता की सीख दी। उनमें महामति प्राणनाथ , दादूदयाल, गुरु जाम्भेश्वर, गुरु नानक देव आदि प्रमुख हैं। रैदास ने भी देशाटन को समाज के कल्याणार्थ आवश्यक माना था और देश के भीतर विभिन्न स्थानों - प्रयाग , मथुरा , वृंदावन, दिल्ली, भरतपुर , जयपुर,

पुष्कर, चित्तौड़गढ़ आदि स्थानों की यात्राएं कीं और संत-समागम के साथ जनता के बीच में अपना संदेश पहुंचाया। उनके देश -भ्रमण का उद्देश्य धार्मिक और सामाजिक समरसता को बढ़ावा देने के लिए था। यात्राओं के दौरान रैदास ने सत्संग का लाभ उठाया और पीड़ित, भ्रमित जन-समुदाय को भक्ति व ज्ञान का अमूल्य रसपान कराया। उन्होंने जनजागृति का संदेश दिया। रैदास की लोकप्रियता बढ़ी, उनकी भक्ति भावना और काव्य साधना का लाभ जनता को मिला। इन यात्राओं में उन्हें यथोचित मान- सम्मान भी मिला। सिकंदर लोदी ने दिल्ली दरबार में आने के लिए रैदास को आमंत्रित किया था। विभिन्न यात्राओं के दौरान अपने सम्मानित किए जाने के विषय में रैदास ने लिखा भी है कि यह मान गरीब निवाज की कृपादृष्टि से ही संभव हुआ है।

ऐसी लाल तुझ बिनु कौन करै,
गरीब निवाजु गुसइयां, मेरा माथै छत्रु धरै।
जाकी जोति जगत को कउ लागै, ता पर तुहीं ढरै।
नीचहं ऊंच करै, मेरा गोविंद काहू तैं न डरै।

(शुकदेव सिंह, रैदास बानी, पद 22, पृष्ठ 63)

साधु पुरुष की संगति के बिना हृदय में भाव नहीं उपजता है और भाव बिना भक्ति संभव नहीं हो सकती है। रैदास कहते हैं -

साध संगति बिना भाउं नहीं उपजै,
भाउ बिन भगति नहीं होय तेरौ।
(संत रैदास, पद 32, पृष्ठ 133)

रैदास के समय देश पर मुगलों का शासन था। सिकंदर लोदी दिल्ली का शासक था। रैदास की जीवन- यात्रा का वह कालखण्ड भक्तियुग का आरंभिक काल भी है जिसे हिंदी साहित्य के इतिहास में पूर्व मध्यकाल कहा गया है। तद्युगीन समाज अनेक धार्मिक और सामाजिक संकीर्णताओं, अंधविश्वासों और रूढ़ियों में फंसा हुआ था। इन

विपरीत परिस्थितियों में संतकवियों ने बड़ी निर्भीकता के साथ अपना विरोध दर्ज कराया है। उन्होंने राजनीतिक और धार्मिक सत्ता की मुखर खिलाफत करने का साहस दिखाया और तद्युगीन सामाजिक चुनौतियों का रचनात्मक जवाब दिया। इस संदर्भ में हमें आचार्य रजनीश का यह कथन उपयुक्त प्रतीत हो रहा है- "रैदास चमार हैं जैसे किसी गहन अंतस्थल में बुद्ध अभी भी गूँज रहे हैं। वही आग, लेकिन रैदास ने उसे आग को आग नहीं बनने दिया। उस आग को रोशनी बना डाला। आग जला भी सकती है और प्रकाश भी दे सकती है। बुद्ध के वचन अंगारे जैसे हैं। बड़ा साहस चाहिए उन्हें पचाने का। अंगारे पचाना है तो साहस तो चाहिए ही रैदास के वचन फूलों जैसे हैं, पचा जाओगे, तब पता चलेगा कि आग लगा गए हैं। वे आगे फूल हैं।" (आग के फूल)

वस्तुतः भारत में यह समय मुख्य रूप से संतकवियों की काव्य-सर्जना का महत्वपूर्ण काल रहा है जिसमें निर्गुण ब्रह्म की उपासना को विशेष महत्त्व दिया गया है। कबीर, गुरु नानक, रैदास, दादूदयाल, सहजोबाई, नामदेव आदि अनेक कवियों ने अपने ज्ञानोपदेश के माध्यम से देश की हताश, निराश और दिग्भ्रमित जनता का मार्गदर्शन किया। यहां प्रसंगवश केवल भारती का एक कथन प्रस्तुत है - "सबसे प्रबल प्रमाण यह है कि संतों का साहित्य जीवन की स्वीकृति का साहित्य है, उसमें निहित जन का आक्रोश और आवेश, सुखी समाज की आकांक्षा और शोषक श्रेणी के प्रपंचों पर आधृत है और सबसे बढ़कर समता, स्वतंत्रता और बंधुत्व की स्पष्ट अभिव्यक्ति है।" (संत रैदास: एक विश्लेषण, पृष्ठ 24)

उस सामंती युग में अन्याय, शोषण, अत्याचार का विरोध भारतीय मनीषियों ने पूरी तत्परता और अपार इच्छाशक्ति के बूते किया था। इस लिहाज से भक्तिकालीन संतों की मुखर अभिव्यक्ति हमें उनकी वाणी में मिलती है। इस प्रसंग में हमें रांगेय राघव का यह कथन स्मरण में आता है - "जब संसार में कार्लमार्क्स नहीं था, जब संसार में द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का चिन्तन नहीं था, तब भी मनुष्य अन्याय के विरुद्ध लड़ता था और यह संघर्ष मध्यकाल के सन्तों में हमें दिखाई देता है।...वे सब निम्न जातियों की मुक्ति के लिए उठे हुए स्वर थे। यह स्वर मानवता का स्वर था और भारत में भी वैष्णव चिंतन इसका मूल था जिसने सबमें समन्वय फैलाने का यत्न किया।" (संगम और संघर्ष, पृष्ठ 92-93) उस दौर के संतों की भांति रैदास ने भी मानवता को सर्वोपरि मानकर समानता, समता के विचार को जन-जन में फैलाया था।

संत रैदास ने अपने सद्गुरु रामानंद के प्रभाव और निज अनुभूतिजन्य यथार्थ से प्रेरित होकर युग-चेतना संपन्न रचनाएं लिखीं। उनके दो प्रमुख ग्रंथ - 'रविदास की बानी' और 'रविदास के पद' मिलते हैं। पाठ भेद के कारण रैदास की रचनाओं के कई रूप मिलते हैं। गुरु ग्रंथ साहिब में भी रैदास के चालीस पदों को संकलित किया गया है। रैदास ने अपने युग में सामाजिक परिवर्तन की जो अलख जगाई उसका प्रभाव आज इक्कीसवीं सदी में भी प्रखर रूप से विद्यमान है।

संत रैदास ने अपनी कथनी और करनी की एकता और अमृत वाणी से समाज के लिए जो मानवीय आदर्श और जीवन-मूल्य प्रस्तुत किए हैं वे शताब्दियों पार आज भी हमें प्रेरणा प्रदान करते हैं। निश्चय ही ये बातें हमारी मनोभूमि बदलने में सहयोगी होंगी। समाज के अति उपेक्षित निम्नवर्ग में जन्मे रैदास ने अपने सत्कर्म, आचरण, ज्ञान

और विचारों से समाज के हर वर्ग के लोगों को प्रभावित ही नहीं किया वरन् अपने प्रति श्रद्धा और भक्ति का ऐसा दिव्यलोक रचा जिसमें प्रविष्ट होने वाला हर आदमी अपने मन की मलिनता और पाखंडपन आदि को त्यागकर मनुष्यता के मार्ग पर चलने को बाध्य हो जाता है। धर्म-कर्म की तमाम रूढ़ियों, विसंगतियों और वासनाओं से मुक्ति पाना उसके जीवन का लक्ष्य बन गया था। रैदास दलित व शोषित वर्ग के ही नहीं समूची इंसानियत के पैरोकार हैं। वे हमारे भारतीय समाज के मसीहा कहे गये हैं। वे हर उस व्यक्ति के लिए आईकान साबित हुए हैं, जो मानवता के हक के लिए समर्पित है तथा धार्मिक सहिष्णुता और समरसता में विश्वास करता है चाहे वह किसी भी वर्ण, जाति कुल, गोत्र का ही क्यों न हो। रैदास भारतीय समाज के मार्गदर्शक व्यक्तित्व हैं। आम आदमी की हैसियत से ऊपर उठकर संतत्व की गरिमा से संपन्न होकर रैदास महान् हुए। एक आध्यात्मिक संत होने के साथ ही वे सामाजिक व्यक्तित्व हैं। चर्मकार होकर अपनी सात्विक रहनी और उच्च चिंतनशीलता के कारण रैदास आम आदमी के बीच बहुत लोकप्रिय हुए। उनकी शिक्षाएं मूल्यपरक हैं या यों कहें कि वे मूल्याधारित शिक्षा के प्रवर्तक हैं। वे संतों व भक्तों के लिए भी आदर्श स्वरूप हैं।

रैदास सत्संगी व्यक्ति थे। साधु-संतों, ज्ञानियों और समाज के विचारशील मनुष्यों के सत्संग में रहने का उन्हें पर्याप्त अवसर मिला। उन्होंने अपने अनुभवों से बहुत कुछ सीखा। सत्संग के प्रभाव से ही दलित जाति का होकर भी उन्होंने अपने कर्मों से समाज में ऊंचा पद प्राप्त किया और आध्यात्मिक महापुरुष हो गए। उन्होंने इस गौरव के लिए ईश्वर को माध्यम बनाया और कहने में तनिक भी संकोच नहीं किया -

प्रभु जी संगति सरनि तिहारी।

जगजीवन राम मुरारी।

(रैदास बानी, पद 116)

प्रभु की संगति से ही नीच जाति से ऊंचा पद मिल गया है। माधव की संगति और शरण पाकर सारा अवगुन दूर हो गया। उपकार है तुम्हारा।

तुम चंदन हम अरंड बापुरो, संग तुम्हारे बासा।

नीच रूख तैं ऊंच भए हैं, गंध सुगंध निवासा।

माधव सत संगति सरनि तुमारी, हम अवगुन तुम उपकारी।

सत्संगति मिलि रहिए माधव जैसे मधुप मखीरा।

(वही, पद 84)

संगति को रैदास ने संतों के लिए आवश्यक बताया है। नीच जाति में पैदा होने के कारण उन्हें समाज के तथाकथित उच्च वर्ग के लोगों की उपेक्षा, घृणा और अपमान को झेलना पड़ा था। इसका विरोध रैदास जी करते हैं। संगति के प्रताप और महत्त्व से रैदास खूब परिचित थे।

तुम चंदन हम रेड़ बापुरे, निकट तुम्हारे बासा।

संगत के परताप महातम, आवै बास सुबासा।

जाति भी ओछी, क्रम भी ओछा, ओछा कसब हमारा।

नीचे ते प्रभु ऊंच कियो है, कह रैदास चमारा॥

(वही, पद 116, पृष्ठ 159)

समाज में अपनी जाति की उपेक्षा और अपमान को लेकर रैदास के मन में पीड़ा का गहरा भाव था। तभी तो उन्हें कहना पड़ा है -

जाती ओछी, पाती ओछी, ओछा जनमु हमारा।

राजा राम की सेवन कीन्हीं, कहि रैदास चमारा।

(वही, पद 84, पृष्ठ 126)

अन्यत्र अपने एक पद में रैदास ने अपनी छोटी जाति को लेकर अकुंठ भाव से लिखा है -

मेरी जात कमीनी, पांति कमीनी, ओछा जनमु हमारा।

तुम सरनागति राजा रामचंद कहि रैदास चमारा ॥

(वही, पद 65, पृष्ठ 107)

प्रभु की कृपा से उनके जीवन में भक्ति और लोक कल्याण की भावना का उदय होता है। बहुत आस्था के साथ रैदास की आत्मस्वीकृति है -

तुम्हरी कृपा तैं ऊंच भए

कहै रविदास चमारा।

रैदास अपने समय के संतों और भक्तों के व्यक्तित्व और विचारों से बहुत गहराई तक प्रभावित हुए। उनमें कबीरदास और मीराबाई अन्यतम हैं। भक्त कवयित्री मीराबाई के गुरु होने का गौरव रैदास को मिला है। मीरा ने स्वयं उनके प्रति अपने शिष्यत्व भाव को व्यक्त किया है -

गुरु रैदास मिले मोहि पूरे, धुरसे कलम मिड़ी।

सतगुरु सै न दई जब आके जोत रली॥"

(चेतनादित्य, मानवतावादी मूल्यों के संस्थापक संत रविदास, जनवरी 30, 2023, चैट जीपीटी)

एक अन्य काव्यपंक्ति में मीरा की आत्मस्वीकृति है कि उन्हें रैदास जैसा गुरु मिला जिसने उन्हें ज्ञान दिया है। ऐसे सतगुरु से मन लगना स्वाभाविक है।

मेरा मन लाग्यौ सतगुरु, अब न रहूंगी अटकी।

गुरु मिलिया रैदासजी, दीन्हीं ज्ञान की गुटकी।

(मीराबाई की पदावली, हि.सा.स., पद 10)

एक अन्य पद में रैदास की ओर संकेत करती हुई मीरा कहती हैं -

रैदास सन्त मिले मोहि सतगुरु,

दीन्हा सुरत सह दानी। (वही, पद 159)

रैदास के विचार अत्यंत उदारतापूर्ण एवं उदात्तभाव संपन्न हैं। तर्क और वितर्क से प्राप्त कोरे ज्ञान के स्थान पर सत्य की पूर्ण अनुभूति ही उनके लिए महत्वपूर्ण थी। इस साधना से मनुष्य राम का परिचय पाकर समस्त दुविधाओं से मुक्त हो जाता है। उनकी भक्ति प्रेमाभक्ति कहलायी है। इस भक्ति का मूलाधार अहंकार की निवृत्ति है। भगवान की भक्ति करते हुए रैदास ने कहा है -

प्रभु जी तुम चंदन, हम पानी,
जाकी अंग -अंग बास समानी ।
प्रभु जी तुम घन बन ,हम मोरा ,
जैसे चितवत चंद चकोरा।
प्रभु जी तुम दीपक, हम बाती ,
जाकी जोति बैर दिन- राती ।
प्रभु जी तुम मोती ,हम धागा ,
जैसे सोने क्ष मिलत सुहागा।
प्रभु जी तुम स्वामी, हम दासा ,
ऐसी भगति करै रैदासा।
(रैदास बानी, पद 6, पृष्ठ 46)

ईश्वर के निरंकारी स्वरूप के उपासक रहे रैदास असत्य के परम विरोधी रहे हैं। जीवन में असत्य को स्थान देने के कारण समाज का बहुत अहित हुआ। झूठ - फरेब की दुनिया आबाद हुई। सत्य का मूल्य रैदास आदि सभी संतों ने एक स्वर से स्वीकार किया और अपनी जीवनशैली का प्रमुख हिस्सा बनाया।

'सदाचार' भक्तिकाल के संत- भक्त कवियों के आचरण का मुख्य गुण था। लोगों को सदाचारी होने का पाठ हमारे संतों ने अपने आचरण और वाणी से सिखाया था। रैदास भी इसके अपवाद नहीं थे। उन्होंने ईश्वर की भक्ति के लिए सदाचार, परहित भाव तथा सद् व्यवहार का पालन करना आवश्यक माना है। दूसरों के साथ सद् व्यवहार करने, विनम्रता तथा शिष्टता के गुणों का विकास करने पर उन्होंने बहुत बल दिया। उनके पदों में प्रभु भक्ति, भावना, ध्यान साधना तथा आत्मनिष्ठा की भावना प्रमुखता से विद्यमान है। इन जीवन मूल्यों की शिक्षा समाज की बेहतरी के लिए बहुत काम की सिद्ध हुई। नाभादास का यह कथन बहुत महत्वपूर्ण है - " इन्होंने श्रुति और शास्त्र के अविरोद्ध सदाचार की बातें कहीं। इनकी विमल वाणी संदेह ग्रंथि के खंडन में निपुण थीं। लोग वर्णाश्रम का अभिमान छोड़कर इनके पदरज की वंदना करते थे। इन्होंने इसी शरीर से परमगति पाई थी।" (छंद 59)

एक संत के लिए अहंकार का विसर्जन प्राथमिक शर्त है। इस दृष्टि से रैदास सर्वोपरि है। कबीर आदि संतों की भांति रैदास भी अभिमान को भक्ति मार्ग में बाधक मानते हैं। अभिमान- शून्य रहकर कर्मरत व्यक्ति जीवन में सफल रहता है जैसे कि विशालकाय हाथी शक्कर के कणों को चुनने में असमर्थ रहता है जबकि लघु शरीर पिपिलिका इन कणों को सरलतापूर्वक चुन लेती है। ईश्वर की भक्ति के लिए मनुष्य को सारा अहंकार और बड़प्पन का भाव मिटाकर विनम्रतापूर्वक आचरण करना होगा। एक भजन में रैदास कहते हैं -

कह रैदास तेरी भगति दूर है, भाग बड़े सो पावै।

तजि अभिमान, मेटि आपा पर, पिपिलक है चुनि खावै॥

(चेतनादित्य, मानवतावादी मूल्यों के संस्थापक संत रैदास, जनवरी 30, 2023)

एक अन्य पद में रैदास ने अभिमान को मन से निकालने के लिए प्रेरित किया है ; क्योंकि साधुत्व तभी अर्जित किया जा सकता है। वे लिखते हैं -

रैदास सोई साधु भला, जिस मन मांहि नहिं अभिमान।

हर्ष, शोक जाने नहीं, जाने सुख दुःख एक समान।

(कुलदीप कुमार, राजकुमार: संत सिपाही रैदास, पृ 10)

संत कबीर के समान रैदास ने भी काव्य ही नहीं, अपितु मनुष्य जीवन के वाह्य सौंदर्य की अपेक्षा आंतरिक सौंदर्य भाव के विकास पर अधिक ध्यान दिया है। आंतरिक मानवीय गुणों की महत्ता से हमारे संत कवि बहुत गहराई तक परिचित थे। हमने पश्चिमी जीवनशैली के प्रभाव के चलते अपने आंतरिक गुणों को भुला दिया जो भारतीय संस्कृति और समाज की मूल्यवान् पूंजी है। इसी पूंजी को बचाने और मनुष्य के जीवन -कर्म में ढालने का प्रयास रैदास आदि संतों ने बखूबी किया और अपना संत -धर्म पूरी गरिमा के साथ निभाया।

रैदास अत्यंत विनम्रतापूर्ण और उदात्त विचारों के संत थे। ऊंच-नीच के मत का खण्डन करने में उनका अटल विश्वास था। " मन चंगा तो कठौती में गंगा " कहने वाले रैदास की भक्ति भावना उच्चस्तरीय है। व्यक्ति -मन के चंगे होने के विचार ने समाज में अद्भुत परिवर्तन किया। आज भी रैदास का यह कथन उनका पर्याय बन चुका है। यह जीवन का अद्भुत सिद्ध मंत्र है। मनुष्य का पूरा जीवन इस एक विचार को केंद्र में रखकर सफल हो सकता है। परंतु यही सबसे बड़ी चुनौती भी है। यह सच है कि भक्तिकालीन संत और भक्त कवियों ने मानव जीवन एवं समाज में आये संकटों के लिए मन को ही जिम्मेदार ठहराया है। इसलिए संत रैदास ने प्रभु के प्रति मन की एकाग्रता और समर्पण भाव पर जोर दिया है।

'बेगमपुरा' की कल्पना में किसी गम के उपजने की कोई भूमिका नहीं रह जाती है। यहां भी मन की पवित्रता को महत्त्व दिया गया है। अपवित्र मन से ईश्वर की आराधना संभव नहीं है। पवित्र मन न होने पर सारे धार्मिक एवं सांस्कृतिक अनुष्ठान व्यर्थ और स्वयं को धोखा देने वाले सिद्ध हुए हैं।

ईश्वर के सान्निध्य में अपने को संपूर्ण लौकिक भय- त्रास, अनुभूतियां, लोक-परलोक, पुनर्जन्म के भय से मुक्त पाते हैं।

अब हम खूबवतन घर पाया, ऊंचा खेर सदा मन भाया।

बेगमपुरा सहर का नाऊं, दुःख अंदेस नाहिं तिहि ठाऊं।

ना तसबीस खिराजु न मालू, खौफ न खता न तरसु जवालु॥

काइमु दाइमु सदा पातिसाही, दाम न, साम एक सा नहीं।

अवादानु सदा मसहूर, यहां गनी बसहिं मामूर।

तिउं तिउं सैर करहिं जिउ भावै, हरम महल मोहिं अटकावै।

कह रैदास खलास चमारा, जो उस सहर सोमीत हमारा।

(रैदास बानी पद 4)

निश्चित रूप से बेगमपुरा एक मूल्यबोध है, जहां समता, समानता एवं भातृत्व बोध है, फिर भी कवि के अपने जन्मस्थान की गूंज को इस रूप में देखा जा सकता है। इसके बावजूद इस बेगमपुरा के अन्य प्रयोजन की ओर भी रैदासी विद्वानों का ध्यान गया है। यह बेगमपुरा एक ऐसे समाज या राज्य की कवि कल्पना है जहां पहुंच कर किसी के मन में दुःख न रह जाए। जहां ऊंच- नीच, शोषण आदि का गम नहीं होगा। इस प्रसंग में ऐसा आभास होता है कि भारत पर शूद्रों का राज्य रहा है। जब सत्ता उनसे छिन गई तब सर्वस्व छिन गया। प्रश्न यह उठता है कि क्या रैदास के मन में कहीं अछूत राज्य कायम होने की कोई कल्पना जगी थी। एक स्थान पर उन्होंने कहा है -

नरपत एक सेज सुख सूया, सुपने भया भिखारी।

अछतराज बिछुरत दुःख पायो, सो मति भई हमारी।

(पद 82)

सत्य और ईमान मनुष्य जीवन के लिए सबसे आवश्यक शिक्षामूल्य हैं। इसलिए सत्य और ईमान से हमारी संपृक्ति बनी रहना चाहिए। यहां तक कि यदि संसार छोड़ने की भी स्थिति आ जाय तो भी विचलित नहीं होना चाहिए। यहां संकोच के लिए कोई गुंजाइश नहीं रह जाती है- " सत्त ईमान न छांड़िए, जग जाए जौ जाए। " यह मूल्यपरक शिक्षा समाज के लिए अपरिहार्य है।

' श्रमेव जयते ' कहने वाले इस देश की संस्कृति में ही श्रम की महत्ता को स्थान मिला है। इस संदर्भ में ध्यातव्य है कि रैदास परिश्रम को सर्वोपरि मानते हैं, नेक कमाई उन्हें स्वीकार थी। उन्होंने बहुत स्पष्ट शब्दों में कहा है -

रैदास स्रम कर खाइये, जौ लौ पार बसाया।

नेक कमाई जो करहुं, कबहुं न निष्फल जाये।

स्रम को ईसर जानिये, जऊं पूजहिं दिन रैन।

रैदास तिन्हहि संसार में, सदा मिलिहि सुख चैन।

(डॉ आर. पी. वर्मा, संत रविदास और मानवीय चेतना, भूमिका, पृष्ठ 2)

' सत्यमेव जयते ' भी हमारी संस्कृति और जीवन पद्धति के केंद्र में स्थापित मूल्य है। परंतु इस सत्य को अपने हृदय में बसाना होगा ताकि पंचदोष नष्ट हो जाये। तभी कोई मनुष्य ऊंचा उठ सकता है। यथा -

जिनके हिरदे सत्त बसे, पंच दोस नाहि।

रैदास वे नर ऊंचे में, समझ में मन मांहि।

(वही, पृष्ठ 71)

' अहिंसा परमो धर्म: ' कहने और मानने वाले इस देश की विडंबना यह है कि हिंसा से हमारा पीछा आज तक नहीं छूटा है। आपत्तिजनक बात यह है कि धर्म के नाम पर हिंसा का कृत्य क्यों किया जाता है ? रैदास ने धर्म और

ईश्वर के निमित्त की गई हिंसा का विरोध किया है। उनका प्रश्न बहुत माकूल है कि ऐसा कौन सा भगवान् या अल्लाह है जो जीव हत्या को पसंद करता है? अर्थात् कोई भी नहीं। किसी जीव की हत्या मनुष्य का सबसे नीच और बुरा कर्म है। इसलिए रैदास ने धर्म के नाम पर पशुवध का खुला विरोध किया है। वे कहते हैं कि हर जीव ब्रह्म के समान है। प्राणिवध का पाप करोड़ों गायों के दान से भी क्षमति नहीं हो सकता है।

प्राणी वध नहीं कीजिए जीवहि ब्रह्म समान।

रविदास पाप नहीं छूटहिं, करो गउन करि दान।

(आचार्य पृथ्वी सिंह आजाद, गुरु रविदास, साखी 175, पृष्ठ 183)

अन्यत्र भी रैदास जीव हत्या का निषेध करते हुए सभी में एक आत्मा का निवास ठहराते हैं। उन्होंने लिखा है -

रविदास जीव मत मारहिं, इक साहिब सभ मांहि।

सभ मांहि एकउ आत्मा, दूसर कोई नांहि।

यदि दया और धर्म मनुष्य के जीवन में होगा तभी उस व्यक्ति और समाज का कल्याण संभव होगा। अन्यथा हृदय में पाप का कीचड़ रहेगा। वे कहते हैं -

दया धर्म जिन्ह में नहिं, हिरदै पाप को कीचा।

रविदास तिन्हहिं जानि हो, महा पातकी नीचा।

भारतीय समाज सदियों से जाति-पांति, वर्ण-व्यवस्था, छुआछूत के रोग से ग्रसित रहा है। इस समस्या से रैदास का भी सामना हुआ। कबीर लगातार प्रतिरोध कर रहे थे। फिर भला रैदास कैसे चुप रह सकते थे। उन्होंने जन्मना ऊंच-नीच के विचार को निरस्त करते हुए कहा है -

रैदास जन्म के कारने, होत न कोऊ नीच,

नर कूं नीच कर डारि है, ओछे कर्म की कीचा।

(वही, साखी 51, पृष्ठ 55)

अर्थात् व्यक्ति जन्म से नहीं, बल्कि अपने कर्म से नीच होता है। कबीर की भांति रैदास भी इस सत्य को स्वीकारते हैं कि सभी मनुष्य एक ही बूंद या नूर यानी ईश्वर से उत्पन्न हुए हैं। वर्ण - अवर्ण, ऊंच - नीच इत्यादि मानव विरोधी विचार निरर्थक है, सत्य से परे हैं। जबकि सच्चाई यह है -

रविदास इकही बूंद सो, सभ ही भयो वित्थार।

मूरख हैं जो करत हैं, वरन, अवरन विचार।।

(वही, साखी 48, पृष्ठ 51)

जातिभेद के उन्मूलन के लिए हमारे मध्यकालीन संतों ने क्रांतिकारी कार्य किया है। बहुत आक्रोश में आकर रैदास ने जातिभेद की जड़ों पर जमकर प्रहार किया है। उनका समरसता का विचार तभी स्थापित हो सकता था जब समाज में हर प्रकार का भेदभाव मिट जाये और मनुष्य को समदृष्टि से देखा और समझा जाए। अपनी व्यापक समदृष्टि से रैदास ने समाज को देखने की कोशिश की है जहां जाति-कुजाति का भेद न रह जाए।

जन्मजात मत पूछिए, का जात अरु पात।
रविदास पुत सब प्रभु के, कोउ नहिं जात कुजात॥
जन्म जात क्यूं छांड़ि करि, करनी जात पर धान।
इसरो वेद को धरम है, करै रविदास बखाना॥
रैदास इक ही नूर ते, जिमि उपज्यो संसार।
ऊंच-नीच किह विध भये, बामन अरु चमार॥
(नंदकिशोर प्रसाद, रैदास की सामाजिक दृष्टि, पृष्ठ 183)

रविदास सामाजिक विषमता से पीड़ित अपनी जाति की मनोव्यथा से भली-भांति परिचित थे। उन्होंने जातिभेद की खाई को पाटने का प्रयत्न किया है। उनका मानना था कि जो कर्म से बड़ा होता है, वही सबसे बड़ा व्यक्ति माना जाएगा। ऊंचे कुल में जन्म लेने से कोई बड़ा नहीं हो जाता है। वे कहते हैं -
ऊंचे कुल के कारणे, ब्राह्मण कोई न होई।
जह जानहि ब्रह्म आत्मा, रविदास कहि ब्राह्मण सोई।
धरम करम जाने नहीं, मन मंह जाति अभिमान।
ऐसउ ब्राह्मण सो भलों, रविदास समक हूं जाना॥

भारतीय समाज की विडंबना यह है कि वह सारी सच्चाईयों से परिचित होकर भी अज्ञानी बना हुआ है। उसकी जड़ बुद्धि में सत्य उद्धाटित नहीं हो पाया है। वह जाति-पाति के फेर में उलझा हुआ है। समाज जाति रोग से भयंकर पीड़ित है। रैदास ऐसे अज्ञानी और भ्रमित व्यक्तियों को समझाने का प्रयास करते हैं। वस्तुस्थिति से उन्होंने लोगों को अवगत कराया है -
जात- पात के फेर मह , उरझ रहे सभ लोग।
मानुसता कू खात है , रविदास जात का रोग॥
(एस के पंकज, संत रविदास , पृष्ठ 180)

सांप्रदायिक सद्भाव राष्ट्रीय मिशन होना चाहिए था; क्योंकि हिंदू और मुसलमान के बीच मेल-मिलाप को लगातार कट्टरवादी शक्तियों ने निष्फल करने का प्रयास किया है। दोनों ओर से विरोध झेलना पड़ रहा है। रैदास का युग भी सांप्रदायिक सौहार्द की दृष्टि से संकटकाल था। दोनों धर्मावलंबियों को लताड़ने की जरूरत रैदास ने बराबर महसूस किया। उन्होंने हिन्दू धर्म से पाखण्ड को अलगाने और परमतत्त्व को पहचाने के लिए प्रेरित किया है। सारे धार्मिक ढकोसलों का विरोध किया है -
कहा भयो नाचे अरु गाये, कहा भयो तप कीने।
कहा भयो जे चरन पखारे, जोलो परम तत्त्व नहिं चीने॥
(योगेन्द्र सिंह, संत रविदास, पद 78, पृष्ठ 154)

हिंदुओं के धार्मिक बाह्याडंबरों का विरोध करने का भरपूर साहस रविदास ने दिखाया है। पाखंड का रास्ता अपनाने पर भगवान का दर्शन सुलभ नहीं हो सकता है। वे कहते हैं -

माथे तिलक हाथ जपमाला, जग ठगने कुं स्वांग बनाया।
मारग छांड़ि कुमारग लइके, सांची प्रीति बिनु राम ना पाया।
का मथुरा, का द्वारका, का काशी- हरिद्वार।
रविदास खोजा दिल अपना, तउ मिलिया दिलदार।।

अपने दिल के भीतर ईश्वर को ढूंढने वाले रविदास किसी भी तरह का पाखण्ड, बनावटीपन बर्दाश्त नहीं कर सकते थे। सहज और स्वाभाविक रूप से साधना करने पर ही भगवत्कृपा प्राप्त हो सकती है। निरंजन तो सत्य मार्ग पर चलने से ही प्राप्त हो सकता है। बहुत ही तीखे स्वर में रैदास पाखंडियों और काम-क्रोध में लिप्त रहने वाले लोगों को फटकार लगाते हुए कहते हैं -

भेष लियो पै भेद न जान्यो, अमृत लेई विषै सो मान्यो।
काम क्रोध में जनम गवायो, साधु संगति मिली राम न गायो।
तिलक दियो पै तपनि न जाई, माला पहिरे घनेरी लाई।
कह रैदास परम जो पाऊं, देव निरंजन सत कर ध्याऊं।।

तप, पूजा, सिर मुंडाना, तीर्थ-व्रत आदि विधि-विधान से प्रभु की प्राप्ति संभव नहीं है। मनुष्य को परमतत्त्व की पहचान होना चाहिए। रैदास के शब्दों में -

कहा भयो तप कीन्हे
कहा भयो जे चरन पखारे, जौं लौ परमतत्त्व नहिं चीन्हे।
कहा भयो ये मुण्ड मुड़ाये, बहुतीरथ व्रत कीन्हें।
(योगेन्द्र सिंह, संत रविदास, पद 78, पृष्ठ 154)

रैदास बहुत स्पष्टवादी और सत्य के प्रति आग्रही थे। मंदिर मस्जिद में शीश झुकाने की अपेक्षा घर-घरव्यापी परमेश्वर को सिजदा करने पर जोर देते हुए कहा है - देहरा अरु मसीत मंहि, रविदास न सीस नवांया।

जिस लौं सीस निवावना, सो ठाकुर सभी थांय।

एक स्थान पर वे कहते हैं -

रविदास न पूजइ देहरा, अरु न मस्जिद जाय।

जहां तहां इस का बास है, तहां-तहां सीस नवाय।

मुसलमान भला उनकी समतावादी दृष्टि से कैसे ओझल हो सकता है? दोनों धर्मों में एकता लाने का रैदास का प्रयत्न सराहनीय कदम है। वे मंदिर और मस्जिद के भेद को मिटाना चाहते थे। सामाजिक वैषम्य को दूर करने हेतु वे कहते हैं -

मुसलमान सों दोस्ती, हिन्दुअन सों कर प्रीत।

रविदास जोति सभ राम की, सभ हैं अपने मीता

सभी का मानुष शरीर एक ही माटी से निर्मित है। सभी का सृजनकर्ता एक ही है। इस घट के भीतर परमात्मा व्याप्त है और उसका कुम्हार एक ही है -

एक माटी के सभ भाड़े, सभ का एकौ सिरजन हारा।

रविदास व्यापै एकौ घट भीतर, सभकौ एक घड़ै कुम्हारा।

मुसलमानों की धार्मिक रूढ़ियों एवं अंधविश्वासों का विरोध करने से भी वे पीछे नहीं रहे हैं। देखिए -

देता रहे हजार बरस, मुल्ला चाहे अजाना।

रविदास खुदा नह मिल सकौं।

(योगेन्द्र सिंह, संत रैदास, पद 74, पृष्ठ 76)

रविदास ईश्वर और अल्लाह को तत्त्वतः एक ही मानते हैं। मंदिर और मस्जिद दोनों पूजास्थल हैं, दोनों में कोई भेद नहीं है। इसीलिए हिंदू और मुसलमान दोनों को सचेत करते हुए उन्होंने कहा है कि एक ही ईश्वर ने दोनों को जन्म दिया है। राम और खुदा में कोई भेद नहीं है। दोनों एक ही हैं।

रविदास हमारो साइयां, राघव राम रहीमा।

सब ही राम को रूप है, कैसों कृष्णकरीमा।

रैदास जीवनभर जातीय, लैंगिक, धार्मिक - सामाजिक एवं सांप्रदायिक विद्रूपताओं के विरोध में निर्भीकतापूर्वक अपनी आवाज उठाते रहे। अपनी रचनाओं के माध्यम से उन्होंने अपने समय के लोगों में जागरूकता ले आने के भरसक प्रयत्न किया। समाज में हर वर्ग के लोगों के बीच में प्रेम, सद्भावना और एकता का मूल्य प्रतिष्ठित करने का उनका प्रयास कहीं भी कमजोर नहीं पड़ा था।

मुगल शासनकाल में हिंदू जनता का बहुत उत्पीड़न हुआ। अपनी बेकद्री से वह हताश और निराश भी हुई। रैदास भी हिंदू समाज के ही व्यक्ति थे। यद्यपि वे अपने ही लोगों के बीच अपमानित और उपेक्षित अनुभव करते हैं। फिर भी, किसी भी प्रकार के अन्याय, शोषण और अपमान को बर्दाश्त करना उनके स्वाधीन चैतन्य मन को स्वीकार नहीं था। किसी भी प्रकार का धार्मिक विवाद उन्हें स्वीकार नहीं था। उसे वे निरर्थक एवं सारहीन मानते हैं। पराधीनता को सबसे बड़ा पाप मानने वाले रैदास ने मनुष्य ही नहीं प्राणिमात्र की स्वतंत्रता का समर्थन किया है। इसीलिए उन्होंने वर्ण एवं जाति व्यवस्था का खुलकर विरोध किया है। समाज में व्याप्त धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक यानी हर क्षेत्र में फैले अंधविश्वास, कदाचार, अनाचार का विरोध करना उनकी नियति थी। वे सबकुछ देखकर मौन नहीं रह सकते थे। उनका प्रतिरोध का स्वर ऊंचा होता गया था।

अपनी आजीविका के लिए उन्होंने चर्मकार का अपना पैतृक पेशा अपनाया था। समाज की दृष्टि से कभी उनके मन में कोई संकोच और उपेक्षा भाव नहीं जगा। अपनी करनी और कथनी का एका सदैव बनाये रखा जो आज के समय में असंभव/अकल्पनीय प्रतीत होता है।

समाज में किसी भी प्रकार की पराधीनता रैदास को स्वीकार नहीं है। वे मनुष्य की स्वाधीनता के समर्थक हैं।

मनुष्य शोषण के मूल में यह दासवृत्ति मुख्य कारण है। पराधीन व्यक्ति से कौन प्रेम कर सकता है ? अर्थात् कोई भी व्यक्ति नहीं। वे कहते हैं -

पराधीनता पाप है, जान लेहु रे मीता।

रविदास दास पराधीन सो कौन करै रे प्री परीता।

(आचार्य पृथ्वी सिंह आजाद, गुरु रविदास, साखी 192, पृष्ठ 190)

पराधीन व्यक्ति की स्थिति बेदीन की है। वह समाज में हीन समझा जाता है।

पराधीन का दीन क्या, पराधीन बेदीन।

रैदास दास पराधीन को, सभ में समाये हीन।

(संत सिपाही रैदास, पृष्ठ 15)

दीन -दुखियों, गरीबों, शोषित -उत्पीड़ित मनुष्यों के प्रति रैदास की गहरी हमदर्दी थी। वे कहते हैं कि दीन - दुखियों की सेवा में अपने आपको समर्पित कर देना चाहिए। ऐसे ही सेवाभाव से प्रभु की प्राप्ति हो सकती है।

दीन-दुखी कर सेव मह लागि रहयो रविदास।

निसि बासर की सेव हो प्रभु मिलन की आस।

समाज में आर्थिक और सामाजिक विषमता को देखकर रैदास बहुत दुखी हुआ करते थे। उनकी कामना थी कि राज - व्यवस्था ऐसी हो कि कोई भी व्यक्ति भूखा न रहे, सभी को खाने के लिए अन्न मिलता रहे। छोटे बड़े सभी परस्पर प्रीतिपूर्वक एक साथ रहें।

ऐसा चाहूं राज मैं, जहं मिलई सबन कू अन्न।

छोटे बड़े सब सम बसें, रहे रविदास प्रसन्न।

(संत सिपाही रैदास)

रैदास समाज में जागरूकता ले आने के लिए सदैव प्रतिबद्ध रहे हैं। उन्होंने साधुता, स्वाभिमान, चरित्रबल, श्रम चेतना की भावना को सामाजिकता का आधार बताया है। उनकी वाणी भक्ति की सच्ची भावना, समाज के व्यापक हित की कामना तथा मानव प्रेम से ओतप्रोत थी। उनकी वाणी का समाज पर इतना व्यापक एवं गहरा प्रभाव पड़ा कि समाज के सभी वर्गों के लोग उनके प्रति श्रद्धालु बन गये।

रविदास प्रेमा भक्ति के प्रति समर्पित हैं। समस्त विकारों से मुक्त होने पर ही भक्ति संभव होगी। हृदय में, कर्म में राम को स्थापित किया जा सकता है। हृदय में राम का स्मरण आवश्यक है-

पंच विकार जौ इहि मन त्यागौ,

तौ मन रामचरन महिं लागौ

रिदै राम सुध करम कमावऊ,

तौ रैदास मधुसूदन पावड़।

(रैदास बानी पद 48, पृष्ठ 76)

बाहर से प्रभु का दर्शन संभव नहीं है। राम चरणों में अपने मन को स्थिर करना होता है; क्योंकि हृदय में ही प्रभु का निवास होता है।

बाहरि खोजन जन्म सिरहानों भ्रिग त्रिस्ना रह्यौ उरझाई।

रामचरन मंह थिर मन राखहुं, रिदै कंवल बसै रघुराई।

(वही, पद 48, पृष्ठ 189)

भक्त के प्रेम के वशीभूत राम हो जाते हैं। चारों दिशाओं में प्रेम का दिया जलायें, परमात्मा की ज्योति में अपनी ज्योति मिला दीजिए। तन मन और आत्मा को न्योछावर कर दीजिए वहां हरि का स्मरण कीजिए। प्रभु की शरण में जाना चाहिए।

प्रेम प्रीति की माल राम चढ़ाइये।

चहुं दिसि दिउरा बारि, जगमग हो रहिये।

जोति जोति सम जोति, हिलमिल हो रहिये।

तन मन आतम बारि, तहां हरि गाइये।

भनत जन रैदास, तुम सरना आइये।

(वही, पद 169, पृष्ठ 211)

वस्तुतः रैदास की रचनाओं, उपदेशों, उनकी शिक्षाओं, अनुभवों और भक्ति भावना द्वारा जनता के लिए ज्ञानामृत पेश किया गया है। सामाजिक एवं आध्यात्मिक रूप से लोक को संपुष्ट करने की शिक्षा रैदास के व्यक्तित्व और रचनाओं से हमें सर्वदा मिली है। उनका स्वप्न था कि समाज में रहने वाले सभी लोग, चाहे वे किसी भी जाति, धर्म, संप्रदाय के हों परस्पर प्रेमपूर्वक मिलजुल कर रहें। सभी का सम्मान हों, किसी की कोई जाति न हो, न धर्म का भेदभाव हो, न संप्रदाय हो, सभी की एक ही जाति, धर्म, संप्रदाय हो और वह है मानव धर्म। सभी को समान अधिकार और शिक्षा मिले। परस्पर विश्व बंधुत्व की भावना से सभी इस संसार में रहें। कहीं कोई आतंक न हो, किसी प्रकार का कोई भय न हो। सभी को श्रम एवं कर्म की महत्ता अपने जीवन में स्वीकार्य हो। जीवन में सत्य को जिसने अपनाया है, परोपकार की भावना अंगीकार की है, वही संत रैदास के ज्ञान-भक्ति-पथ का सच्चा पथिक कहलायेगा। उनकी भक्ति का वही अधिकारी है। अध्यात्म मार्ग का अनुगामी है। अतः संत रैदास आज भी सर्वथा प्रासंगिक हैं। उनका सामाजिक समतावादी चिंतन समाज के लिए बहुमूल्य प्रदेय है। निस्संदेह रैदास का संत व्यक्तित्व और वाणी कालजयी है।

योगी धर्मनाथ भिक्षुक लिखते हैं - "विचारों की श्रेष्ठता, समाज के हित की भावना से प्रेरित कार्य तथा सद्व्यवहार जैसे गुण ही मनुष्य को महान् बनाने में सहायक होते हैं। इन्हीं गुणों के कारण सन्त रैदास को अपने समय के समाज

में अत्यधिक सम्मान मिला और इसी कारण आज भी लोग इन्हें श्रद्धापूर्वक याद करते हैं।" (रविदास जीवन और चरित्र और रविदास वचनमृत)

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में स्कूली बच्चों और उच्च कक्षाओं में मूल्य शिक्षा को प्रोत्साहित किया गया है। भारतीय ज्ञान परंपरा को अपने जीवन और कर्म में चरितार्थ करने के लिए राष्ट्रीय शिक्षा नीति में पर्याप्त महत्त्व दिया गया है। हमें संत -महात्माओं, ऋषियों -मुनियों, ज्ञानियों के मानवता - उत्थान संबंधी मूल्य शिक्षाओं को अपने जीवन और कर्म क्षेत्र में चयन करना चाहिए। रैदास की मूल्य शिक्षा इस सभ्यता के लिए वरदान सिद्ध होगी यदि हम राष्ट्रीय शिक्षा नीति का ईमानदारी से पालन करेंगे और अपने सोच -विचार में उन सभी चिंतन कर्णों को संजोकर रखना चाहेंगे जो एक सभ्य और शिक्षित समाज के लिए अपरिहार्य है।

समग्र रूप से यदि हम विचार करें तो कह सकते हैं कि संत रैदास का संपूर्ण चिंतन और व्यावहारिक शिक्षा -ज्ञान हमारे देश की नयी पीढ़ी के लिए मूल्यवान धरोहर है। युवाओं के अंतस् के परिष्कार और संवेदनाओं के विकास में इनकी वाणी महती भूमिका निभा सकती है। भारतीय ज्ञान -परंपरा के सार्थवाह संत रैदास की वाणी हमारे अंतस् की कालिमा को धुलकर ज्ञान से प्रकाशमान कर सकेगी।

मेरी विनम्र भावांजलि है - " तुमसे सीखे हर कोई / सच्चा मानुष बन जाना /मन चंगा था सदा तुम्हारा / कठौती में भी देखा गंगा/गंगाजल सा पवित्र तेरा मन/ सदाचार के तुम अवतारी / जन -जन के हित-चिंतक थे / धर्म- कर्म का अंदाज तुम्हारा /अंतता था जिसमें जग सारा/ भक्ति -प्रेम के वशीभूत तुम / सदियों पार आज जीवित हो / हर मनुष्य के रग - रग में/ ख्वाब तुम्हारे पले- बड़े हैं/ हर सच्चे मानुष के मन में/याद करेंगे सदियों तक/ तेरी निर्मल जीवन गाथा।"

संदर्भ ग्रंथ :

- 1- आचार्य परशुराम चतुर्वेदी (सं) : हिंदी साहित्य का बृहद इतिहास, चतुर्थ भाग, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी सं. 2025 वि.
- 2-रांगेय राघव : संगम और संघर्ष, किताब महल, 1953
- 3- डा शुक्देव सिंह (संपादक) : रैदास बानी, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 2003
- 4- योगेन्द्र सिंह : संत रैदास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2015
- 5-नन्दकिशोर प्रसाद : रैदास की सामाजिक दृष्टि, अनंग प्रकाशन, दिल्ली, 2024
- 6-आचार्य पृथ्वी सिंह आजाद : गुरु रविदास, नेशनल बुक ट्रस्ट, दिल्ली 1975/1973
- 7- एस. के. पंकज, संत रविदास

8- रैदास की वाणी, विल्वेडियर प्रेस, इलाहाबाद

9- डा आर पी वर्मा, संत रविदास और मानवीय चेतना, कांति पब्लिकेशंस

10- कुलदीप कुमार, राजकुमार : संत सिपाही रैदास <https://drambedkarbooks.com>

11- आचार्य रजनीश : आग के फूल, ओशो इंटरनेशनल फाउंडेशन, 1970

12- कंवल भारती : सन्त रैदास: एक विश्लेषण , बोधिसत्व प्रकाशन, रामपुर, 2000

13- योगी आदित्यनाथ भिक्षुक : रविदास जीवन चरित्र और रविदास वचनामृत, रणधीर बुक डिपो, हरिद्वार

14- नाभादास : भक्तमाल

15- मीराबाई की पदावली, हिंदी साहित्य सम्मेलन, सं. 2005

पत्रिकाएं : रैदास की अनेक काव्य पंक्तियां निम्नलिखित पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों से साभार ली गई हैं।

1- अपनी माटी (शोध-पत्रिका), यूजीसी केयर लिस्टेड, संपादक माणिक एवं जितेन्द्र यादव, ई- आई एस एस एन 2322-0724

2- नरेंद्र मिश्र, सामाजिक समरसता के संवाहक, हरिद्रा, शोध-पत्रिका

3- स्कालरली रिसर्च जर्नल, आनलाइन, आई एस एस एन 2278-8808, 1 मार्च, 2023

4- चेतनादित्य, मानवतावादी मूल्यों के संस्थापक संत रविदास, जनवरी 30, 2023, चैट जीपीटी